Research Chronicler: International Multidisciplinary Peer-Reviewed Journal
ISSN: Print: 2347-5021 www.research-chronicler.com ISSN: Online: 2347-503X

Dalit Vimarsh Ki Prishthbhumi Aur Media

Dr. Kripa Shankar Chaubey, Ph.D.

Professor & Incharge, Regional Centre, Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya,

(A Central University) Kolkata, India

Abstract

Mahatma Gandhi's journalism teaches us that we should honestly strive to make society aware of the exploitative nature of the caste. Simultaneously, we should also sensitize society about Dalit issues. To achieve this objective He started **Harijan.** It is clear that until every section of society does not get due representation in the media, the one-sided, solicitous and unbalanced dissemination of information will continue. It was to counter this imbalance that Ambedkar wanted Dalits to have their own media outlets. He believed that only Dalit journalism could battle injustice faced by Dalits. It was with this objective in mind that he began publishing **Mooknayak.** He also brought out **Bahishkrit Bharat.** Gandhi's & Ambedkar's writings are as relevant and inspiring today as they were in their times.

The credit for introducing the concept of Dalit discourse in Hindi goes to **Hans** monthly edited by Rajendra Yadav. He began editing Hans in 1986 and many a Dalit writer got a name by publishing in it. After Hans, if any magazine systematically and extensively expounded the concept of Bahujan, it is Forward Press. ***Forward Press*** began publication from New Delhi in 2009. This bilingual magazine, based on the ideology of Phule and Ambedkar, continued to be published in print until June 2016, when it went online. Like *Forward Press*, ***Justice News*** has also launched its website. In 2007, a group of Dalit intellectuals, senior journalists and social activists set up the People's Media Advocacy and Research Centre and launched the online edition of *Dalit Media Watch.* Now, it has been renamed *Justice News*. Its bulletin extensively covers atrocities against Dalits all over the country.

Key Words: Harijan-Gandhiji used to say Harijan to SC/ST people. He started Harijan Magazine in 1933; **Mooknayak** means the hero of the voiceless. Mooknayak was the name of Marathi fortnightly published by Baba Saheb Bhimrao Ambedkar.

भारतीय समाज में आदि काल से ही विषमता के तत्व मौजूद रहे हैं। भारत में जाति और वर्ण व्यवस्था बहुत पुरानी है। किंतु उस व्यवस्था के प्रतिरोध की परंपरा भी कम पुरानी नहीं है। ज्ञात इतिहास में जाति प्रथा को सबसे पहली चुनौती गौतम बुद्ध ने दी थी। उन्होंने भिक्षु संघ की स्थापना की, जिसमें जाति संबंधी किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं था। गौतम बुद्ध ने भिक्षु संघ में सभी जाति–वर्ग के लोगों को प्रवेश देकर बराबरी का संदेश दिया था। बौद्ध दार्शनिक दिङ.नाग, अश्वघोष, धर्मकीर्ति और नागार्जुन ब्राह्मण होते हुए भी वर्ण व्यवस्था का प्रतिरोध करते हैं और बौद्ध चिंतन की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं। सिद्धों-नाथों की परंपरा में सरहपाद और गोरखनाथ और निर्गुण धारा के संतों में कबीर-रैदास वर्ण व्यवस्था का प्रतिरोध करते हैं। छह सौ साल पहले हुए कबीर ने जातिभेद पर कड़े प्रहार किये। उन्होंने कहाः "जो तू बाभन बभनी जाया, आन राह तै क्यों नहीं आया।" कबीर ने यह भी कहा, "जाति पाति पूछे नहि कोय, हरि को

भजै सो हरि का होय।" पांच सौ साल पहले गुरु नानक ने पंजाबी साहित्य में दलित के पक्ष में सशक्त आवाज उठाईः "नीचा अंदर नीच जाति/ नीची हूं अति नीच/ नानक तिन के संग साथि/ वडिया सिऊ क्या रीस।" गुरु नानक ने दलित भाई मरदाने को अपना शिष्य बनाया। गुरु अर्जुन देव ने गुरुग्रंथ साहिब के संपादन के समय नामदेव, कबीर और रैदास जैसे दलित भक्तों को सम्मानजनक स्थान दिया। सूफी कवि शाह हुसैन ने उच्च जाति को चुनौती दीः "सभै जाति वड्डियाँ/ निमाणी फकीरां दी जाति।" नामदेव ने कहाः "कहा करउ जाति कहा करउ पाति/ राम को नाम जपउ दिन राति।" सोलहवीं शताब्दी में ही कन्नड़ की कवयित्री अक्क महादेवी ने कहा था, "हे मेरे जूही के फूल जैसे ईश्वर/ मंगवाओ मुझसे भीख/ और कुछ ऐसा करो/ कि भूल जाऊं अपना घर पूरी तरह/ झोली फैलाऊं और न मिले भीख/ कोई हाथ बढ़ाए कुछ देने को/ तो वह गिर जाए नीचे/ और यदि मैं झुकूं उसे उठाने को/ तो कोई कुत्ता आ जाए/ और उसे झपटकर छीन ले मुझसे।" अक्क महादेवी के समकालीन वसवन्ना ने कहा था, "हे भगवान/ सहन न कराओ मुझे/ उच्च कुल में पैदा होने का यह अनवरत/ कशाघात!" उन्होंने यह भी कहा था, "हाय-हाय शिव/ आपने मुझे जन्म क्यों दिया? क्या आप मेरी जगह उगा नहीं सकते थे/ कोई वृक्ष या झाड़ी?" वसवन्ना ने एक कविता में कहा, "व्यास एक मछली पकड़नेवाले के पुत्र थे/ मार्कण्डेय जातिच्युत थे जन्म से ही/ चिंता मत करो जाति की/ अगस्त्य वास्तव में चिड़ीमार थे/ और दुर्वासा गाँठते थे जूता।"

साहित्य के अलावा दूसरे क्षेत्रों के मनीषियों ने भी जाति प्रथा का प्रतिरोध जारी रखा। स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883) ने वर्ण व्यवस्था का प्रतिरोध करते हुए कहा था, "जो शास्त्र और पुराण शूद्रों को वेदों का अध्ययन से रोकते हैं, वे कुंए में फेंक दिये जाने चाहिए।" स्वामी दयानंद सरस्वती के समकालीन ज्योतिबा फुले (1827-1890) ने तो जातिभेद का प्रतिरोध करने के लिए सत्यशोधक समाज की स्थापना की। उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले को लड़कियों को पढ़ाने के लिए ब्राह्मणों के तीव्र विरोध को झेलना पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मलयालम साहित्य में दलित विमर्श को कुमारन आशान (1873-1924) ने खड़ा किया। केरल के अस्पृश्य माने जानेवाले ईषवा समुदाय में जन्मे कुमारन आशान ने 'चिंताविष्टा सीता' और 'चांडाल भिक्षुकी' जैसी कालजयी कृतियां दीं। 'चांडाल भिक्षुकी' में राजा के समक्ष बुद्ध के मुख से उन्होंने कहलवायाः मुझे बताओ/ क्या ब्राह्मण किसी लता के डंठल/ या किसी बादल से जन्मा है? क्या जाति पाई जाती है/ किसी अस्थि/ मज्जा या रुधिर में? क्या बन्ध्या है किसी दलित स्त्री की देह किसी ब्राह्मण के रेतस के प्रति? कुमारन आशान की अमर पंक्ति हैः अपने नियमों को बदलो, नहीं तो तुम्हारे नियम तुम्हें बदल डालेंगे। बीसवीं शताब्दी में कन्नड़ साहित्यकार यूआर अनंतमूर्ति ने 'संस्कार' उपन्यास लिखकर दलित विमर्श को गति दी तो तेलुगू साहित्य में वही काम महाकवि गुर्रम गाजुआ (1895-1971) ने किया। गुर्रम गाजुआ की पद्यबद्ध आत्मकथा-ना कथा (मेरी कहानी) का पहला भाग 1951 में छपा। उनकी प्रबंध रचनाएं-फिरदौसी और गाब्बिलम की खासी चर्चा रही। उन्होंने लिखा हैः क्या कभी शांति संभव होगी? क्या आदमी इसी तरह बंटा रहेगा जातियों और धर्मों में? क्या हिंदू और मुसलमान कभी साथ-साथ लड़ेंगे साझे लक्ष्य के लिए? क्या सह अस्तित्व संभव होगा दक्षिण के हाथियों और उत्तर के हाथियों का? गाब्बिलम (चमगादड़) से कहते हैं-जब तुम उल्टे टंगे होगे किसी मंदिर में/ तुम्हारा मुँह बहुत पास होगा शिव के कानों के/ उनमें चुपके से बुदबुदा देना मेरी यातना की कहानी। बस इतना ध्यान रहे/ वहां कोई पुजारी न हो।

बीसवीं शताब्दी में तीन बड़े राजनेता- महात्मा गांधी, बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर और राममनोहर लोहिया जाति-प्रथा से टकराते हैं। गांधी जी आचार्य क्षितिमोहन सेन शास्त्री की धारणा को स्वीकार करते हैं। क्षिति मोहन सेन रवींद्रनाथ टैगोर के समकालीन

और प्रकांड विद्वान थे। उनकी बहुचर्चित किताब है- 'भारतवर्ष में जाति भेद'। उस किताब का हिंदी अनुवाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रकाशित कराया था। द्विवेदी जी ने ही उसका संपादन भी किया है। उस पुस्तक में आचार्य क्षिति मोहन सेन भारत की जाति व्यवस्था पर चर्चा प्रारंभ करने के पहले कई दूसरे देशों की जाति व्यवस्था का परिचय देते हैं। वे लिखते हैं,"प्राचीन काल में मिस्र में जमींदार, श्रमिक और क्रीतदास तीन श्रेणियां थीं। धीरे-धीरे वहां योद्धा व पुरोहित का गौरव ऊंचा माना जाने लगा और शिल्पी तथा क्रीतदास (गुलाम)का नीचे। चीन में भद्र श्रेणी, किसान, शिल्पी व वणिक चार श्रेणियां थीं। वणिक का स्थान नीचे था। जापान में भी ये चार श्रेणियां थीं।1 बोर्निया में तो तीन श्रेणियां भी हैं। मैक्सिको में भी तीन जातियां हैं। वहां सिर्फ स्पेनीय लोग उत्तम हैं, मिश्रित लोग मध्यम और आदिम जातियां अधम।2 अरब के दक्षिणी प्रदेशों में कारीगर लोग ही अंत्यज थे। उन्हें गांव या नगर के बाहर बसना पड़ता है। रोम में अभिजात और प्राकृत दो श्रेणियां थीं। ग्रीस और प्राचीन जर्मनी में भी अभिजात लोगों की एक विशेष श्रेणी थी। ईरान में भी चार वर्ण थे,यद्यपि एक वर्ण के लोग गुणकर्मानुसार दूसरे में जा सकते थे।3 यानी इन श्रेणियों में छूआछूत न था। जिस देश के आदमी जितनी ही आदिम अवस्था में होते हैं, छूआ-छूत का विचार उनमें उतना ही कठोर होता है। स्पर्श दोष से अपनी विशेष शक्ति खो देने की और दूसरों के निकट से नाना अमंगल के पाने की आशंका इस प्रकार के विचार के मूल में होती है।"4

उस टिप्पणी के बाद क्षितिमोहन सेन का ध्यान वेदों पर जाता है। वेद चूंकि भारत के प्राचीनतम ग्रंथ हैं इसलिए भारत में जाति भेद का संदर्भ उठाते ही क्षितिमोहन सेन ऋग्वेद का उद्धरण देते हैं,"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू सदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।" यानी ब्राहमण की उत्पत्ति प्रजापति के मुख से, क्षत्रिय की भुजाओं से, वैश्य की जंघाओं से और शूद्रों की पैरों से हुई थी। ऋग्वेद के उद्धरण के बाद श्री सेन गीता का संदर्भ उठाते हैं,"चातुर्वण् र्यं मयां सृष्टं गुणकर्मविभागशः" गीता में भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं कि गुण-कर्म विभाग के अनुसार चारों वर्णों की सृष्टि उन्होंने ही की है। क्षिति मोहन सेन ने लिखा है कि श्रीकृष्ण ने जिस तरह चातुर्वण्य का निर्देश किया था, अगर वह प्रचलित होता तो भारतीय जाति व्यवस्था से हमारा शायद उपकार ही होता। उस हालत में समाज में एक गति और स्पंदन दिखाई पड़ता। मनु ने भी कहा है कि अवसर विशेष पर ब्राह्मण शूद्र हो जाता है और शूद्र ब्राह्मण हो जाता है। परंतु ये व्यवस्थाएं और विधियां इस देश में धीरे-धीरे अचल हो उठीं। संस्कृत के काव्य, पुराण, नाटक आदि में हीनवृत्ति ब्राह्मण और उच्च वृत्त शूद्र की कम चर्चा नहीं है। चरित्र और शील में कभी-कभी शूद्रों को ब्राह्मणों से भी अधिक उन्नत पाया गया है।5

क्षितिमोहन सेन जन्मना वर्ण व्यवस्था को मानने से इंकार करते हैं। क्षितिमोहन सेन की तरह ही गांधी अस्पृश्यता का तो विरोध करते हैं किंतु वर्ण व्यवस्था का नहीं। हालांकि गांधी हरिजनों का उद्धार चाहते थे, इससे कोई भी इंकार नहीं कर सकता। हरिजन सेवक संघ की स्थापना और उसके बैनर तले सेवा कार्यों से लेकर 'हरिजन' का प्रकाशन इसका प्रमाण है। यह इतिहास स्वीकृत तथ्य है कि 4 फरवरी 1932 को 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के बंद होने के उपरांत गांधी जी ने हरिजनों के उद्धार के लिए ही 'हरिजन' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक समाचार पत्र निकाला। देशभर में उन्होंने हरिजन सेवक संघ की शाखाएं बनाईं। संघ की अछूतोद्धार संबंधी साप्ताहिक गतिविधियों की जानकारी 'हरिजन' के हर अंक में दी जाती थी। 11 फरवरी 1933 को निकले 'हरिजन' के प्रवेशांक की संपादकीय में ही गांधी जी ने 'अस्पृश्यता' शीर्षक संपादकीय लिखी और उसमें साफ –साफ कहा कि जातीय छूआछूत शास्त्रों के खिलाफ है। प्रवेशांक में ही गांधी ने सात पंडितों के हस्ताक्षर का एक पत्र प्रकाशित किया जिसमें कहा गया था कि चारों वर्णों में

जो समान अधिकार हैं, उनका अधिकार हरिजन को मिलना चाहिए। ये अधिकार हैं-मंदिर प्रवेश, शालाओं में शिक्षा, सार्वजनिक कुओं, घाटों, तालाबों और नदियों में निस्तार सुविधा। गांधी जी ने 'हरिजन' के प्रवेशांक के लिए बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर से संदेश भेजने को कहा तो उत्तर में अम्बेडकर ने सात फरवरी 1933 को लिखे पत्र के रूप में संदेश की जगह टिप्पणी भेजी। उसमें उन्होंने कहा, "दलित वर्ग वर्ण व्यवस्था का प्रति उत्पाद है और जब तक वर्ण व्यवस्था रहेगी, दलित वर्ग बने रहेंगे। इसलिए जाति प्रथा की समाप्ति ही दलितों के लिए एकमेव स्वीकार्य बात है और आनेवाले संघर्ष में यही तत्व हिंदुओं की रक्षा करेगा और उनके अस्तित्व को सुनिश्चित करेगा।" 'हरिजन' में सभी राज्यों में हरिजन उत्थान के लिए किए गए कार्यों का विवरण छपता था। 'हरिजन' के आरंभिक अंकों को देखने से ज्ञात होता है कि प्रथम हरिजन दिवस 18 दिसंबर 1932 को मनाया गया था किंतु उस दिन किए गए कार्यों से गांधी जी संतुष्ट नहीं थे। द्वितीय हरिजन दिवस अप्रैल 1933 के अंतिम रविवार को मनाया गया। उसके लिए उन्होंने छह कार्यक्रम घोषित किए थेः 1. हरिजन दिवस प्रातः पांच बजे प्रार्थनाओं से प्रारंभ हो और हरिजनों के लिए कुछ राशि, कपड़े और अनाज अलग निकालकर जरूरतमंदों को दिया जाए। जो गरीब हैं और ऐसा करने में असमर्थ हैं, उन्हें उपवास रखना चाहिए चाहे एक समय का ही क्यों न हो। 2. भंगियों का काम स्वयं किया जाए या उनके कार्य में हाथ बंटाया जाए। 3. घर-घर जाकर राशि या सामग्री दान स्वरूप प्राप्त की जाए। इसके बाद हरिजन बस्तियों में जाकर उनके घरों की सफाई की जाए। 4. हरिजनों की बैठक लेकर उनकी जरूरतों की जानकारी प्राप्त की जाए। 5. हरिजनों और सवर्णों की संयुक्त बैठकें आयोजित कर अछूतोद्धार के कार्यों संबंधी प्रस्ताव भी पारित किए जाएं। 6. जहां जनमत का समर्थन हो, वहां हरिजनों को सार्वजनिक कुओं से पानी लेने दिया जाए और निजी मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिए जाएं। इन सबके बाद इस दिन किए गए सभी कार्यों की रिपोर्ट प्रकाशनार्थ 'हरिजन' को भेजी जाए। द्वितीय हरिजन दिवस देशभर में मनाए जाने की रिपोर्ट 'हरिजन' के अंकों में छापी गई। द्वितीय हरिजन दिवस मनाने के बाद भी गांधी जी इस बात को लेकर दुःखी थे कि उस दिवस को सभी देशवासियों का समर्थन नहीं मिला। इसी सवाल पर उन्होंने 8 मई से 29 मई 1933 तक 21 दिनों का अनशन किया। अपने अनशन के नतीजों पर संतोष जताते हुए गांधी जी ने 8 जुलाई 1933 के 'हरिजन' की संपादकीय में लिखा, "अपने पाठकों को मुझे यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि मेरे अनशन से हरिजन भी उद्वेलित हुए हैं।"

गांधी जी की दलित हित चिंता की पुष्टि अपना मैला साफ करने से लेकर अगले जन्म में हरिजन महिला के रूप में पैदा होने की उनकी इच्छा से भी होती है। गांधी ने 'यंग इंडिया' में लिखा था, "मैं फिर से जन्म नहीं लेना चाहता लेकिन मेरा पुनर्जन्म हो ही तो मैं अछूत पैदा होना चाहूंगा ताकि मैं उनके दुःखों, कष्टों और अपमानों का भागीदार बनकर स्वयं को और उन्हें इस दयनीय स्थिति से छुटकारा दिलाने का प्रयास कर सकूं। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र में न हो, बल्कि अतिशूद्र में हो।"6 छूआछूत उन्मूलन के लिए गांधी अपनी पत्नी तक को छोड़ने पर भी विचार करने से नहीं हिचकते। 'यंग इंडिया' में उन्होंने लिखा था, "अपनी पत्नी के साथ बंधन में बंधने से बहुत पहले ही मैं छूआछूत उन्मूलन के कार्य के साथ बंध गया था। हमारे संयुक्त जीवन में दो ऐसे अवसर आए जब अछूतोद्धार और पत्नी के साथ रहने के बीच एक चीज को चुनना था और मैं अछूतोद्धार को ही चुनता। लेकिन मैं अपनी पत्नी का आभारी हूँ जिसने संकट को टाल दिया। मेरे आश्रम में, जो मेरा परिवार है, कई अछूत हैं और एक प्यारी नटखट लड़की तो मेरी अपनी बेटी की तरह ही रहती है।7 गांधी लिखते हैं, "लोगों के प्रति प्रेम में छूताछूत की समस्या मेरे बाल्यकाल में ही उठा दी थी। मेरी मां ने कहा, इस बच्चे को मत छूना

यह अछूत है। 'क्यों न छूऊँ?' मैंने पटलकर पूछा और उसी दिन से मेरा विद्रोह आरंभ हो गया।8 गांधी ने जिस स्वराज्य के लिए लंबा संघर्ष किया, उसे भी छूआछूत रहने पर वे बेकार मानते हैं। 'यंग इंडिया' में उन्होंने लिखा था, "यदि हम भारत की जनसंख्या के पांचवें हिस्से को सदा के लिए पराधीन रखना चाहें और उन्हें राष्ट्रीय संस्कृति की उपलब्धियों से जान-बूझकर वंचित रखें, तो स्वराज्य बेकार है। हम इस महान शुद्धि आंदोलन में भगवान की सहायता चाहते हैं, लेकिन उसकी सृष्टि के सर्वाधिक सुपात्र प्राणियों को मानवता के अधिकार देना नहीं चाहते। यहि हम स्वयं अमानवीय हैं तो दूसरों की अमानवीयता से मुक्ति पाने के लिए ईश्वर से याचना कैसे कर सकते हैं?9 गांधी मानते थे कि धर्म के पवित्र नाम पर मनुष्य को उत्पीड़ित करते जाना कट्टर हटधर्म के अलावा और कुछ नहीं हैं।10 गांधी जी का बल छूआछूत मिटाने के लिए हिंदू धर्म में सुधार लाने पर था। उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा था, "हिंदू धर्म के सुधार और उसके वास्तविक संरक्षण के लिए, छूआछूत को मिटाना सबसे आवश्यक बात है... छूआछूत को मिटाना... एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है।11 अगर छूआछूत कायम रहती है तो हिंदू धर्म को खत्म हो जाना चाहिए।12 गांधी लिखते हैं, "मैं तो यहां तक कहूंगा कि छूआछूत कायम रहने से हिंदू धर्म का खत्म हो जाना ही अच्छा है।13 गांधी जी छूआछूत को खत्म कर मानव जाति के पुनरुद्धार का सपना देखते थे। 'हरिजन' में उन्होंने लिखा था, "छूआछूत से लड़ने और उस संघर्ष के लिए स्वयं को अर्पित करने में मेरी आकांक्षा मानव जाति के संपूर्ण पुनरुद्धार की है। वह सीपी में चांदी के आभास की तरह, मात्र एक स्वप्न भी हो सकता है। लेकिन मेरे लिए मेरी यह आकांक्षा यथार्थ है, अतः यह स्वप्न नहीं है। रोमां रोलां के शब्दों में 'विजय लक्ष्य की प्राप्ति में नहीं, अपितु उसके लिए अथक प्रयास में निहित होती है।"14

अस्पृश्यता को तो गांधी जी खत्म करना चाहते हैं किंतु जाति व्यवस्था को नहीं। छूआछूत और जाति पर उन्होंने लिखा, "अछूतों के कारण जाति-व्यवस्था को समाप्त करना उतना ही गलत है, जितना कि किसी भद्दी अंग वृद्धि के लिए शरीर को और खर-पतवार की वजह से फसल को नष्ट कर देना। इसलिए, जिसे हम अछूतपन कहते हैं, उसे पूर्णतया नष्ट कर दिया जाना चाहिए। यदि सारी व्यवस्था को नष्ट होने से बचाना है तो इस अतिरेक का उच्छेदन आवश्यक है। छूआछूत जाति व्यवस्था के कारण उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि हिंदू धर्म में ऊंच-नीच के भेदभाव के कारण उत्पन्न हुई है और इसे नष्ट कर रही है। इसलिए छूआछूत पर आक्रमण इस 'ऊंच-नीच' पने पर आक्रमण है। जिस क्षण छूआछूत का अन्मूलन हो जाएगा, जाति-व्यवस्था स्वयं शुद्ध हो जाएगी अर्थात, मेरे स्वप्न के अनुसार, सच्चे वर्ण धर्म की स्थापना हो जाएगी। समाज के चार भाग परस्पर पूरक होंगे जिनमें कोई किसी से श्रेष्ठ अथवा हीन नहीं होगा और प्रत्येक भाग हिंदू धर्म की समूची काया के लिए समान रूप से आवश्यक होगा।"15

वर्णाश्रम धर्म में अपनी आस्था के लिए गांधी जी जो तर्क देते हैं, वह सहजता से पचानेलायक नहीं है। वे लिखते हैं, "वर्णाश्रम धर्म पृथ्वी पर मनुष्य के जीवन-ध्येय को परिभाषित करता है। मनुष्य धन-संपदा जुटाने और आजीविका के विभिन्न साधनों की खोज करते रहने के लिए बारंबार देह धारण नहीं करता, यह इसलिए देह धारण करता है कि अपनी ऊर्जा का एक-एक अणु अपने स्रष्टा को जानने में खर्च कर दे। अतः उसे, अपनी प्राण रक्षा के निमित्त, अपने पूर्वजों के व्यवसाय तक ही अपने को सीमित रखना चाहिए। वर्णाश्रम धर्म यही है। न इससे ज्यादा, न कुछ कम।"16 गांधी कहते हैं, "पैतृक व्यवसायों पर आधारित वर्ण व्यवस्था में मुझे विश्वास है। चार वर्ण चार सार्वभौम व्यवसायों से जुड़े हैं- ज्ञान देना, असहायों की रक्षा करना, कृषि और वाणिज्य कर्म तथा शारीरिक श्रम द्वारा सेवाएं प्रदान करना। ये चार व्यवसाय सारी मानव जाति में समान रूप से विद्यमान हैं। लेकिन हिंदू धर्म ने इन्हें हमारे अस्तित्व

का नियम मानते हुए, सामाजिक संबंधों और व्यवहार को नियमन के लिए इनका इस्तेमाल किया है। गुरुत्वाकर्षण का नियम हम सभी को प्रभावित करता है, हम उसके अस्तित्व से परिचित हों या न हों। लेकिन जो वैज्ञानिक इस नियम से अवगत हैं, उन्होंने इसकी प्रयुक्ति से ऐसी-ऐसी चीजें निकाली हैं कि दुनिया हैरत में है। इसी प्रकार, हिंदू धर्म ने वर्ण के नियम की खोज और प्रयुक्ति से सारी दुनिया को आश्चर्यचकित कर दिया। जब हिंदू जड़ता के शिकार थे तब वर्ण-व्यवस्था के दुरुपयोग के फलस्वरूप असंख्य जातियां पैदा हो गईं और अंतर्जातीय विवाहों तथा अंतर्जातीय भोजों को लेकर अनावश्यक और हानिकर प्रतिबंध लगा दिए गए। वर्ण-व्यवस्था का इन प्रतिबंधों से कोई लेना-देना नहीं है। विभिन्न वर्णों के लोग परस्पर विवाह कर सकते हैं और एक-दूसरे के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं। ये प्रतिबंध शुद्धता और सफाई के हित में आवश्यक हो सकते हैं पर यदि कोई ब्राह्मण लड़का शूद्र लड़की से विवाह करता है या शूद्र लड़का ब्राह्मण लड़की से विवाह करता है तो इससे वर्ण के नियम का कोई उल्लंघन नहीं होता।"17 गांधी का जोर शुद्धीकरण पर है। वे लिखते हैं, "आज ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र केवल नाम की चिप्पियां हैं। जहां तक मैं समझता हूँ, वर्ण-व्यवस्था पूरी गड्डमगड्ड हो गई है और अच्छा हो, यदि सभी हिंदू स्वेच्छा से अपने को शुद्ध करना आरंभ कर दें। ब्राह्मणवाद की सच्चाई को साबित करने और सच्चे वर्ण-धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने का यही एकमात्र उपाय है।"18

गांधी जी कहते हैं, "मैं मानता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में कुछ सहज प्रवृत्तियां लेकर पैदा होता है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ निश्चित कमियां भी लेकर पैदा होता है जिन्हें वह दूर नहीं कर सकता। इन कमियों का सावधानी के साथ प्रेक्षण करने के फलस्वरूप ही वर्ण का नियम प्रतिपादित किया गया। इसने कतिपय प्रवृत्तियों वाले कतिपय लोगों के लिए कतिपय कार्य-क्षेत्र निश्चित कर दिए। लोगों की सहज कमियों को स्वीकार करते हुए भी, वर्ण के नियम में ऊंच-नीच का कोई भेद नहीं माना गया है, बल्कि इसने एक ओर तो प्रत्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम का फल मिले, इसकी गारंटी दी और दूसरी ओर, उसे अपने पड़ोसियों पर दबाव डालने से रोका। इस महान नियम को विकृत कर दिया गया है और यह बदनाम हो चुका है। लेकिन मुझे पक्का विश्वास है कि जब इस नियम के निहितार्थों को पूरी तरह समझ कर इसे लागू किया जाएगा तभी आदर्श सामाजिक व्यवस्था विकसित हो सकेगी।"19 लेकिन इसी के समानांतर गांधी जी अंतर्जातीय विवाह और अंतर्जातीय भोज के पक्ष में अपनी राय देते हैं। वे लिखते हैं, "यद्यपि वर्णाश्रम में अतंर्जातीय विवाह और अंतर्जातीय भोज पर कोई पाबंदी नहीं है, पर इसमें कोई बाध्यता लागू नहीं की जा सकती। आदमी कहां शादी करे और किसके साथ भोजन करे, इसका फैसला करने के लिए उसे आजाद छोड़ देना चाहिए।"20

गांधी जी चार विभाजनों की वकालत करते हैं। वे लिखते हैं, "मैं चार विभाजनों को ही मौलिक, स्वाभाविक और आवश्यक मानता हूं। असंख्य उपजातियां कभी-कभी सुविधाजनक हैं, पर प्रायः ये अवरोधक सिद्ध होती हैं। इनका विलयन जितनी जल्दी हो जाए, उतना ही अच्छा है।21 गांधी जी कहते हैं, "आर्थिक दृष्टि से, एक जमाने में जाति का बड़ा महत्व था। इससे पैतृक कौशल की रक्षा होती थी और प्रतियोगिता मर्यादित रहती थी। यह कंगाली को दूर रखने का सर्वोत्तम उपाय था। इसमें व्यापार श्रेणियों के सभी लाभ थे। यद्यपि इससे साहस अथवा आविष्कार को बढ़ावा नहीं मिलता था, पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह उनके मार्ग में बाधक थी..ऐतिहासिक दृष्टि से, जाति-व्यवस्था को भारतीय समाज की प्रयोगशाला में मनुष्य का प्रयोग या सामाजिक संमजन कहा जा सकता है। यदि हम इसे सफल सिद्ध कर सकें तो इसे संसार को उसकी काया पलटने, निर्मम प्रतियोगिता को समाप्त करने और धनलोलुपता तथा लालच से उत्पन्न होने वाले

सामाजिक विघटन को रोकने के सर्वोत्तम साधन के रूप में पेश कर सकते हैं।"22 जाति और वर्ण के बारे में गांधी लिखते हैं, "मैंने प्रायः कहा है कि मैं जाति का जो आधुनिक अर्थ है, उसमें विश्वास नहीं करता। यह अनावश्यक है और प्रगति के लिए बाधक है। न मैं मनुष्यों के बीच असमानताओं में विश्वास करता हूं। हम सब बिल्कुल बराबर हैं। लेकिन समानता आत्माओं की है, शरीरों की नहीं। अत: यह एक मानसिक स्थिति है। हमें समानता हासिल करनी है। एक व्यक्ति का स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ समझना ईश्वर और मानव के प्रति पाप है। अतः जाति, जहां तक वह ऊंच-नीच का भेद करती है, एक बुराई है।"23

गांधी ने 'द हिंदू' के 19-09-1945 के अंक में लिखा, "जाति-भेद ने हमारे अंदर इतनी गहरी जड़ें जमा ली हैं कि उससे भारत के मुसलमान, ईसाई और अन्य धर्मावलंबी भी कुप्रभावित हो गए हैं। वैसे, जातिगत अवरोध कमोवेश मात्रा में दुनिया के अन्य भागों में भी पाए जाते हैं, इसका अर्थ यह है कि इस बीमारी से पूरी मानव जाति ग्रस्त है। इससे सच्चे अर्थ में धर्म की स्थापना करके ही दूर किया जा सकता है। मुझे किसी धर्म ग्रंथ में ऐसे अवरोधों और भेदभावों का विधान नहीं मिला। धर्म की दृष्टि में सभी मनुष्य बराबर हैं। विद्या, बुद्धि या धन के कारण कोई व्यक्ति अपने को उनसे श्रेष्ठ होने का दावा नहीं कर सकता जिनके पास इनका अभाव है। यदि कोई व्यक्ति सच्चे धर्म के शुचिकारी तत्व और अनुशासन से आप्लावित और पवित्रीकृत है तो उसे चाहिए कि अपने से कम भाग्यशाली लोगों से साथ अपने लाभों को बांटने का दायित्व निभाए। इस दृष्टि से, अपनी वर्तमान पतित अवस्था में, सच्चे धर्म का तकाजा है कि हम सब स्वेच्छा से अतिशूद्र बन जाएं। हमें स्वयं को अपने धन का स्वामी नहीं, बल्कि न्यासी मानना चाहिए और अपनी सेवा के उचित पारिश्रमिक से अधिक को अपने पास न रखते हुए शेष को समाज-सेवा पर लगा देना चाहिए। इस व्यवस्था में, न कोई अमीर होगा, न कोई गरीब। सभी धर्म समकक्ष माने जाएंगे। धर्म, जाति या आर्थिक शिकायतों को लेकर उठने वाले तमाम झगड़े विश्व शांति को भंग करना बंद कर देंगे।" इस तरह स्पष्ट है कि गांधी की पत्रकारिता जाति भेद से पूरी शक्ति से टकराती है। गांधी जी वर्ण व्यवस्था में आस्था प्रकट कर संशय जरूर पैदा करते हैं लेकिन सिर्फ इसी कारण अथवा स्वानुभूति बनाम सहानुभूति का प्रश्न खड़ा कर गांधी के दलित संबंधी लेखन के महत्व को नहीं घटाया जा सकता।

जाति प्रथा को लेकर गांधी और अम्बेडकर के आपस में टकराने की वजह सिर्फ गांधी की वर्ण व्यवस्था में आस्था नहीं थी। अंग्रेज सरकार ने अम्बेडकर से सहमति जताते हुए जब यह घोषणा की कि आरक्षित स्थानों पर केवल दलित ही अपनी पसंद के व्यक्ति को वोट देकर चुन सकेंगे तथा सामान्य सीटों पर भी वे अन्य जातियों के प्रत्याशियों को वोट दे सकेंगे तो गांधीजी ने उसका यह कहकर विरोध किया कि इससे हरिजन हिन्दुओं से अलग हो जाएंगे। उन्होंने यरवदा जेल में आमरण अनशन आरंभ कर दिया। गांधी जी के जीवन की रक्षा के लिए अंततः डा. अम्बेडकर को झुकना पड़ा और दलित अपने अधिकार से वंचित हो गए। पूना पैक्ट के उस संदर्भ का महत्व यह है कि जो समझौता हुआ, वही आगे चलकर आरक्षण व अन्य सुविधाओं के रूप में फलीभूत हुआ। 'आधुनिकता के आईने में दलित' पुस्तक में संकलित 'आत्मशुद्धि बनाम आत्म सम्मान' शीर्षक लेख में डोडुबेल्लापुरा रामैया नागराज ने लिखा है, "तीस के दशक के मध्य तक गांधी और अम्बेडकर वैसे नहीं रह गए थे जैसे वे अपने गहन टकराव के शुरुआती दौर में थे। दोनों तब तक एक-दूसरे से काफी प्रभावित और एक-दूसरे के असर से रूपांतरित हो चुके थे।"24 इसी पुस्तक में संकलित 'गैरदलितों की नजर में दलित' शीर्षक लेख में धीरूभाई शेठ ने लिखा है, "गांधी को दलित बनने और उनके साथ एकरूप होने में काफी हद तक कामयाबी मिली थी और वे इस लिहाज से गैर दलित नहीं माने जा सकते।"25 'आधुनिकता के आईने में दलित' पुस्तक में ही संकलित 'दलित उभार के मायने' शीर्षक लेख में

रजनी कोठारी ने लिखा है, "अंतिम विश्लेषण में गांधी दलित उत्पीड़न तथा मुसलमानों के अलग-थलग पड़ने की समस्याओं का समाधान करने में नाकाम रहे। न वे देश का विभाजन रोक सके और न ही वे हिंदू धर्म का मानवीकरण कर सके।"26

गांधी से अलग दृष्टिकोण अपनाते हुए अम्बेडकर ने जाति भेद को खत्म करने के लिए बहुविध प्रयास किए। सामाजिक अन्याय के हर कारक के खिलाफ उन्होंने संघर्ष किया। अपने संघर्ष को बल पहुंचाने के लिए उन्होंने पत्रकारिता का भी सहारा लिया। डा. अम्बेडकर का मानना था कि दलितों को जागरूक बनाने और उन्हें संगठित करने के लिए उनका अपना स्वयं का मीडिया अति आवश्यक है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने 31 जनवरी 1920 को मराठी पाक्षिक 'मूकनायक' का प्रकाशन प्रारंभ किया था। 'मूकनायक' यानी मूक लोगों का नायक। 'मूकनायक' के प्रवेशांक की संपादकीय में अम्बेडकर ने उसके प्रकाशन के औचित्य के बारे में लिखा था, "बहिष्कृत लोगों पर हो रहे और भविष्य में होनेवाले अन्याय के उपाय सोचकर उनकी भावी उन्नति व उनके मार्ग के सच्चे स्वरूप की चर्चा करने के लिए वर्तमान पत्रों में जगह नहीं। अधिसंख्य समाचार पत्र विशिष्ट जातियों के हित साधन करनेवाले हैं। कभी-कभी उनका आलाप इतर जातियों को अहितकारक होता है।"27 उसी संपादकीय टिप्पणी में अम्बेडकर लिखते हैं, "हिंदू समाज एक मीनार है। एक-एक जाति इस मीनार का एक-एक तल है और एक से दूसरे तल में जाने का कोई मार्ग नहीं। जो जिस तल में जन्म लेता है, उसी तल में मरता है।"28 वे कहते हैं, "परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार न होने के कारण प्रत्येक जाति इन घनिष्ठ संबंधों में स्वयंभू जाति है। रोटी-बेटी व्यवहार के अभाव कायम रहने से परायापन स्पृश्यापृश्य भावना से इतना ओत-प्रोत है कि यह जाति हिंदू समाज से बाहर है, ऐसा कहना चाहिए।"29 अम्बेडकर ने उस संपादकीय टिप्पणी में 97 वर्ष पहले जो कहा था, वही आज का भी कटु यथार्थ है। अम्बेडकर मानते थे कि अछूतों के साथ होनेवाले अन्याय के खिलाफ दलित पत्रकारिता ही संघर्ष कर सकती है। स्वयं अम्बेडकर की पत्रकारिता कैसे इस सवाल पर मुखर थी, इसकी बानगी उनकी लिखी 'मूकनायक' के 14 अगस्त 1920 के अंक की संपादकीय में देखी जा सकती है, "कुत्ते-बिल्ली जो अछूतों का भी जूठा खाते हैं, वे बच्चों का मल भी खाते हैं। उसके बाद वरिष्ठों-स्पृश्यों के घरों में जाते हैं तो उन्हें छूत नहीं लगती। वे उनके बदन से लिपटते-चिपटते हैं। उनकी थाली तक में मुंह डालते हैं तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती। लेकिन यदि अछूत उनके घर काम से भी जाता है तो वह पहले से बाहर दीवार से सटकर खड़ा हो जाता है। घर का मालिक दूर से देखते ही कहता है-अरे-अरे दूर हो, यहां बच्चे की टट्टी डालने का खपड़ा रखा है, तू उसे छूएगा?"30 कहना न होगा कि विकल कर देनेवाली यह संपादकीय टिप्पणी जाति में बंटे भारतीय समाज को आईना दिखाने में आज भी सक्षम है। केवल मीडिया ही नहीं, सभी क्षेत्रों में अम्बेडकर दलितों की हिस्सेदारी सुनिश्चित किए जाने के प्रबल पक्षधर थे। 28 फरवरी 1920 को प्रकाशित 'मूकनायक' के तीसरे अंक में अम्बेडकर ने 'यह स्वराज्य नहीं, हमारे ऊपर राज्य है' शीर्षक संपादकीय में साफ-साफ कहा था कि स्वराज्य मिले तो उसमें अछूतों का भी हिस्सा हो। स्वराज्य पर अम्बेडकर का चिंतन लंबे समय तक चला। 27 मार्च 1920 को प्रकाशित 'मूकनायक' के पांचवें अंक की संपादकीय का शीर्षक हैः 'स्वराज्य में हमारा आरोहण, उसका प्रमाण और उसकी पद्धति।' इसमें अम्बेडकर ने मुख्यतः निम्न बिंदुओं को उठाया हैः 1. हिंदुस्तान का भावी राज्य एक सत्तात्मक या प्रजा सत्तात्मक न होकर प्रजा प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य होनेवाले हैं। इस प्रकार के राज्य को स्वराज्य होने के लिए मतदान का अधिकार विस्तृत करके जातिवार प्रतिनिधित्व देना जरूरी है। 2. हिंदू धर्म ने कुछ जातियों को श्रेष्ठ और वरिष्ठ व कुछ को कनिष्ठ और अपवित्र ठहराया है। स्वाभिमान शून्य नीचे की जातियों के लोग ऊपर की जातियों को पूज्य मानते हैं

और शील शून्य ऊपर की जाति के लोग नम्र भाव रखनेवाली इन जातियों को नीच मानते हैं। 3. दलित उम्मीदवार को ऊंची जाति का मतदाता नीच समझकर मत नहीं देगा और आश्चर्य की बात यह है कि ब्राह्मणेतर और बहिष्कृत लोग बाह्मण सेवा का सुनहरा संयोग आया देख पुण्य संचय करने के लिए उनके पैरों में गिरने को दौड़ पड़ेंगे। 4. हरेक व्यक्ति को मतदान का अधिकार मिलने पर चुनाव की पद्धति से, संख्या के अनुपात से जातिवार प्रतिनिधित्व देना चाहिए। 5. स्वराज्य मिलेगा, उससे प्राप्त होनेवाली स्वयंसत्ता सब जातियों में कैसे विभाजित की जाएगी, जिसकी वजह से स्वराज्य ब्राह्मण राज्य नहीं होना चाहिए, यह प्रश्न मुख्य है।31

3 अप्रैल 1927 को अम्बेडकर ने मराठी पाक्षिक 'बहिष्कृत भारत' निकाला। वह 1929 तक निकलता रहा। बाबा साहेब अछूतों की कमजोरियों को भी ठीक-ठीक पहचानते थे और उसकी खुलकर आलोचना करते थे। उनके इस आलोचनात्मक विवेक की झलक हम 'बहिष्कृत भारत' के दूसरे अंक यानी 22 अप्रैल 1927 के अंक में प्रकाशित उनकी संपादकीय टिप्पणी में पा सकते हैं, "आचार-विचार और आचरण में शुद्धि नहीं आएगी, अछूत समाज में जागृति और प्रगति के बीज कभी नहीं उगेंगे। आज की स्थिति पथरीली बंजर मनःस्थिति है। इसमें कोई भी अंकुर नहीं फूटेगा इसलिए मन को सुसंस्कृत करने के लिए पठन-पाठन व्यवसाय का अवलंबन करना चाहिए।"32 आलोचनात्मक विवेक के समांतर अम्बेडकर ने दलितों के आरक्षण का सवाल जोर-शोर से उठाया था ताकि दलितों को ऊपर उठाया जा सके। 20 मई 1927 को प्रकाशित 'बहिष्कृत भारत' के चौथे अंक की संपादकीय में बाबा साहेब ने लिखा था, "पिछड़े वर्ग को आगे लाने के लिए सरकारी नौकरियों में उसे प्रथम स्थान मिलना चाहिए। यह विचार प्रगतिशील लोगों को अस्वीकार नहीं है परंतु यदि धन के स्वामी कुबेर पर अपनी संपत्ति सब लोगों में समान रूप से बांटने का प्रसंग आए तो योग्य मांग (अतिशूद्र) जाति के व्यक्ति को योग्य जोशी अपनी वृत्ति उसको अर्पण करने के प्रसंग में प्रोग्रेसिव व्यक्ति का भी आश्चर्य में मुंह खुला रह जाएगा।"33 'बहिष्कृत भारत' के बाद 1928 में अंबेडकर ने समाज में समता लाने के उद्देश्य से 'समता नामक 'पाक्षिक पत्र निकाला। बाद में उसका नाम 'जनता' कर दिया गया और अंततः 1954 में पाक्षिक 'समता' का नाम बदलकर 'प्रबुद्ध भारत' कर दिया गया। 'प्रबुद्ध भारत' आरंभ से आखिर तक साप्ताहिक रहा। 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'समता' और 'प्रबुद्ध भारत' में प्रकाशित अम्बेडकर की तलस्पर्शी संपादकीय टिप्पणियां भारत की समाज व्यवस्था से मुठभेड़ के रूप में देखी जानी चाहिए। अम्बेडकर किसी विषय पर तटस्थ पर्यवेक्षक की तरह नहीं लिखते थे, अपितु हर बहस में हस्तक्षेप करते हुए यथास्थिति बदलने का प्रयास करते थे। अम्बेडकर ने धर्म, जाति व वर्ण व्यवस्था की विसंगतियों की जहाँ गहरी छानबीन की, वहीं उस सामाजिक ढाँचे की परख भी की, जिसके अन्दर ये वर्ण व्यवस्था काम करती हैं। इस लिहाज से जाति-वर्ण व्यवस्था पर अम्बेडकर का मूल्यांकन सटीक है और इसीलिए विश्वसनीय दस्तावेज भी। इस दस्तावेज का मूल्य तब और बढ़ जाता है, जब पूरे परिदृश्य का जायजा व्यापकता और गहराई से लेते हुए सम्बन्धित सभी मुद्दों को उभारने की कोशिश की गई हो। इसीलिए अम्बेडकर का लेखन आज भी उतना ही प्रेरणास्पद व प्रासंगिक है जितना उनके समय में था।

गांधी और अंबेडकर के बाद राममनोहर लोहिया ने जाति, वर्ण, धर्म, संप्रदाय, क्षेत्र, लिंग, वर्ग आदि शोषणकारी प्रवृत्तियों के प्रति समाज को आगाह कर उसे इन सारे पूर्वाग्रहों और मनोग्रंथियों से मुक्त करने की गंभीर कोशिश की। लोहिया ने भारतीय समाज और राजनीति में आमूलचूल परिवर्तन लाने के लिए जाति तोड़ो अभियान चलाया। वह अभियान उन्हीं मुद्दों पर चला था जिसके बारे में अपनी पुस्तक 'कास्ट सिस्टम' में लोहिया ने सुचिंतित और सारगर्भित ढंग से विवेचन किया है। जाति तोड़ो अभियान लोहिया

का सबसे बड़ा क्रांतिकारी योगदान माना जाता है। उस अभियान के प्रभाव में लोगों ने जनेऊ तोड़ डाले। अपने नाम के साथ जाति लिखना छोड़ दिया। लोहिया ने पिछड़ों की लड़ाई को स्त्रियों के उत्थान से जोड़ा। लोहिया ने नारा दिया था-'पिछड़ा पावे सौ में साठ।' लोहिया ने जाति भेद का जिस पुष्ट मनोबल से प्रतिरोध किया, उससे वे कहीं गांधी तो कहीं अम्बेडकर को भी एक नया, अप्रत्याशित संदर्भ दे जाते हैं।

गांधी, अंबेडकर और लोहिया के अनुयायी आज भी अपनी तईं मुख्यधारा के सभी पक्षों को दलित मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाने का प्रयास कर रहे हैं। यही काम भारतीय भाषाओं का साहित्य भी कर रहा है और पत्रकारिता भी। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता में बहुजन अवधारणा को प्रारंभ करने का श्रेय राजेंद्र यादव द्वारा संपादित मासिक पत्रिका 'हंस' को जाता है। जिस तरह हिंदी काव्यधारा में छायावाद की नींव डालने का श्रेय 'इन्दु' (1909) और उसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय 'माधुरी' (1921) को, नई कविता आंदोलन के विकास में बड़ी भूमिका निभाने का श्रेय 1954 में प्रकाशित 'नयी कविता' (संपादकः जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी और विजयदेवनारायण साही) को जाता है, नई कहानी आंदोलन को जन्म देने का श्रेय 'कहानी' और 'नई कहानी' पत्रिकाओं को और समानांतर कहानी को जन्म देने का श्रेय 'सारिका' को उसी तरह अस्सी के दशक में दलित और स्त्री विमर्श को आंदोलन के रूप में चलाने और चर्चा के केंद्र में लाने का श्रेय राजेंद्र यादव द्वारा संपादित 'हंस' को जाता है। राजेंद्र यादव ने 1986 में 'हंस' का संपादन शुरू किया और उसमें छपकर ही कई दलित लेखक प्रतिष्ठित हुए। उसके बाद हिंदी साहित्य की बहुजन अवधारणा को व्यवस्थित रूप देनेवाली पत्रिकाएं रहीं 'फारवर्ड प्रेस', 'बुधन', 'सम्यक भारत', 'दलित दस्तक', 'आदिवासी सत्ता', 'युद्धरत आम आदमी' और 'मैत्री टाइम्स'। नई दिल्ली् से 2009 में 'फारवर्ड प्रेस' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। फूले- अम्बेसडकरवाद की वैचारिकी पर आधारित यह द्विभाषी पत्रिका जून 2016 तक निकलती रही। अब उसका आनलाइन संस्करण ही निकलता है। वह पत्रिका समाज के बहुजन तबकों में लोकप्रिय थी। पत्रिका का एक महत्व पूर्ण अवदान यह भी माना जाता है कि इसने भारत की विभिन्नब भाषाओं के सामाजिक न्यातय के पक्षधर बुद्धिजीवियों को एक सांझा मंच प्रदान किया। समाजविज्ञान व राजनीतिक विज्ञान की दृष्टि से 'ओबीसी विमर्श की सैद्धांतिकी' तथा हिंदी साहित्य में 'बहुजन साहित्यत की अवधारणा' विकसित करने में फारवर्ड प्रेस का विपुल योगदान माना जाता है। पत्रिका के सीईओ तथा प्रधान संपादक आयवन कोस्का् और संपादक प्रमोद रंजन हैं। 'फारवर्ड प्रेस' की तरह ही 'जस्टिस न्यूज' का इंटरनेट संस्करण आरंभ किया गया है। दलित समुदाय के बुद्धिजीवियों, वरिष्ठ पत्रकारों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के एक समूह ने पीपुल्स मीडिया एडवोकेसी एंड रिसर्च सेंटर का गठन कर जनवरी 2007 में 'दलित मीडिया वाच' का इंटरनेट संस्करण आरंभ किया था। अब उसे 'जस्टिस न्यूज' के नाम से निकाला जाता है। उसकी बुलेटिन में पूरे भारत में दलितों के साथ होनेवाली ज्यादती को प्रमुखता से कवर किया जाता है। कवरेज का स्रोत विभिन्न अखबार तथा पीपुल्स मीडिया से संबद्ध प्रामाणिक जानकारियां होती हैं। यह बुलेटिन प्रतिदिन अंग्रेजी व हिंदी में जारी होता है और देश-विदेश के लाखों लोग इसे रोज पढ़ते हैं। दलित मीडिया वाच/ जस्टिस न्यूज के न्यूज अपडेट्स का बहुत असर लक्ष्य किया गया है। उनके न्यूज अपडेट्स पर राष्ट्रीय अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग और मानवाधिकार आयोग समेत विभिन्न राज्य सरकारें कार्रवाइयां भी करती रही हैं। इन बहुजन पत्रिकाओं ने समाज की अधोगति को युगधर्म मानने से इंकार करते हुए मानवीय संवेदना को क्षत-विक्षत करने वाले औद्धत्य का प्रतिरोध कर अपने सजग दायित्व-बोध का परिचय दिया है।

Subscription yearly Rs. 6.
„ Half yearly Rs. 3.

THE SIMLA VISIT

YOUNG INDIA

Published Every Wednesday. Edited by M. K. Gandhi.

New Series Vol. III, No. 21 — AHMEDABAD, WEDNESDAY, MAY [illegible], 1921 — Price Two Annas Per Copy.

Notes.

Maulana Mahomed Ali—I observe that the *Indian Social Reformer* rates me for not having said anything about Moulana Mahomed Ali's speech at Madras, and not having criticised Lala Lajpatrai's at Bombay. I must not answer the inferences and the innuendoes contained in the paragraph. Critics do not know under what difficulties I edit *Young India*. I rarely read newspapers. I cannot even get them during my incessant travelling. But having read this criticism, I purposely procured at Simla a copy of the Moulana's speech. I have only just read it. I have twice read the paragraph criticised, and I am of opinion that it contains nothing in it that is objectionable. The speech is certainly not inconsistent with his interview at Allahabad. In the Madras speech, he simply states the Muslim position. In the Allahabad interview, he has accepted my application and restriction of the ideal Muslim conduct. There is no doubt that if the Mussalmans could take up arms, they would do so in defence of Islam. The difficulty arises because of our belief in the impossibility of the Afghans invading to defeat the British without wishing at the same time to occupy India. That may be and will be a good reason for Mussalmans, if they are true to India, not joining the Afghans even if they were able. But we may not dispute the theoretical religious right of Mussalmans to state their correct position. We can only honour them for it. The two great qualities of the brothers are their bravery and sincerity. And I can read nothing but these two qualities in the Madras speech.

Lala Lajpat Rai—Let me take the *Indian Social Reformer* into the secret of my methods. My assistant drew my attention to the hostile criticism of Lalaji's speech and asked me whether I wished to say anything upon it. I had not the text of his speech before me, nor had seen any criticism. I therefore wrote to Lalaji, asking him to enlighten me on the matter, and suggesting that he should apologise, if a single hasty word was uttered. It has been my privilege on close acquaintance to find him generous, forgiving and frank. He said in his letter that his Bombay speech was a specially considered utterance, and that he had not attacked any person in it. He had only dealt with the action of the Moderates as a party. He sent me the cutting for my opinion. This was whilst I was in Sindh. I was unable to read it and had forgotten all about it, till the *Reformer's* rebuke reminded me of it. I have now read Lalaji's speech and have much pleasure in stating that I find nothing offensive or discourteous in it. It is undoubtedly in Lalaji's fighting style. It is a party speech. He has adopted, by long residence in the west, the western form of criticism. But it is best western form. There is nothing vulgar in it. His charges are not unjustified by the conduct of the Moderate ministers. His worst charge is that they have merged themselves in the bureaucracy. It is a serious charge to make, but the instances adduced by him surely prove it. The Moderates may retort, if they choose, that outsiders cannot appreciate the difficulties of the ministers. But that is just what proves the error of the great leaders who find themselves allied with the Government. They should have known that such would be their lot, as they should now know by experience, that it is no use being ministers, until they have an effective control over the Government policy. All the repression that is now going on, is almost as bad as before. It makes little difference that now there is the farce of a trial. The fact is, that most of the political sections of the Penal Code are such as to bring almost every non-co-operation speech under them. I believe that if I was charged, I should have to plead guilty to the charge of sedition. It is the duty of a non-co-operator to preach disaffection towards the existing order of things. Non-co-operators are but giving disciplined expression to a nation's outraged feelings. I should like to see a considered reply to Lala Lajpat Rai's strong indictment. In my humble opinion, the speech of Lala Lajpat Rai does not betray any loss of temper, and is quite in keeping with the advice he tendered the youth of the country in his concluding paragraphs.

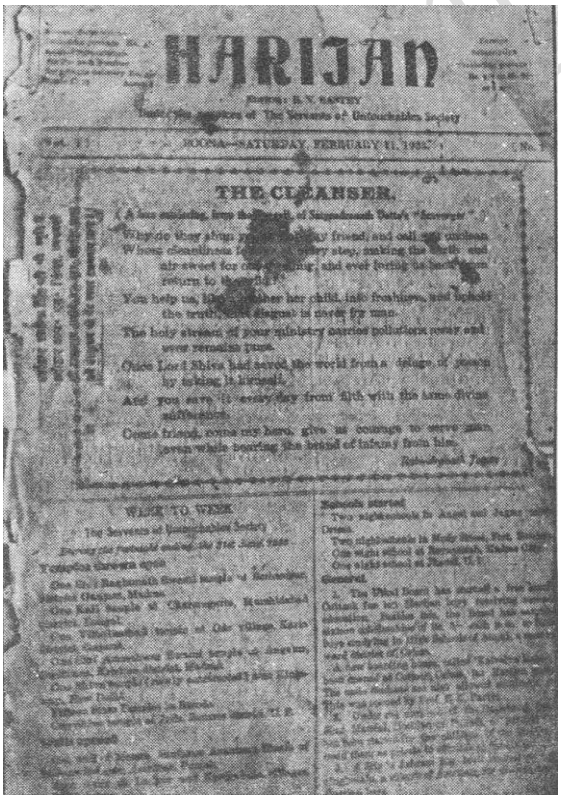

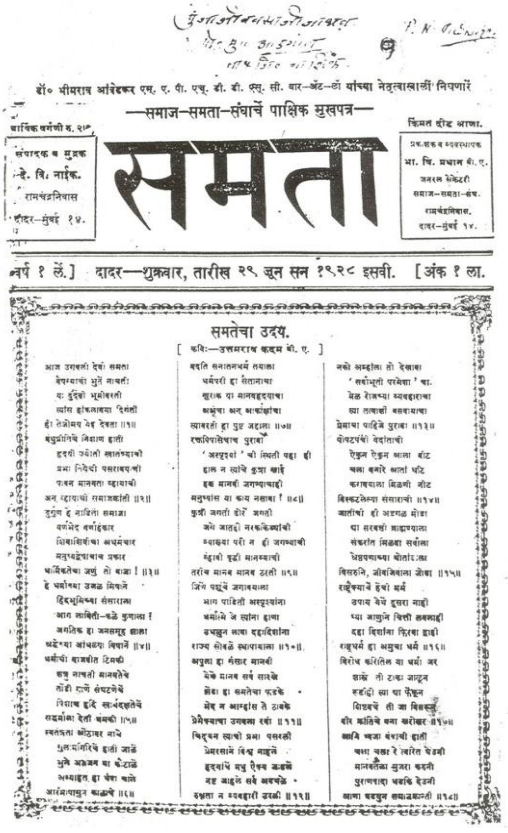

'A Messenger of God'—I have received a cutting, in which I am reported to be credited with being a messenger of God, and I am asked whether I claim to have any special revelation from God. I have already dealt with the miracles attributed to me. As to this the latest charge, I must disown it. I pray like every good Hindu. I believe that we can all become messengers of God, if we cease to fear man and seek only God's Truth. I do believe I am seeking only God's Truth and have lost all fear of man. I therefore do *feel* that

नमुन्याचा अंक. पाक्षिक पत्र.

बहिष्कृत भारत

वर्ष १ लें.] मुंबई, रविवार तारीख ३ माहे एप्रिल सन १९२७. [अंक १ ला.

सुबोध वचनें. आजकालचे प्रश्न.

HARIJAN

Editor: R. V. SASTRY

POONA—SATURDAY, FEBRUARY 11, 1933

THE CLEANSER.

WEEK TO WEEK

डॉ० भीमराव आंबेडकर एम्. ए. पी. एच्. डी. डी. एस्. सी. बार–अॅट–लॉ यांच्या नेतृत्वाखालीं निघणारें

—समाज–समता–संघाचें पाक्षिक मुखपत्र—

वार्षिक वर्गणी रु. २।‍

संपादक व मुद्रक दे. वि. नाईक. रामचंद्रनिवास दादर–मुंबई १४.

समता

किंमत दीड आणा.

प्रकाशक व व्यवस्थापक भा. वि. प्रधान बी. ए. जनरल सेक्रेटरी समाज–समता–संघ. रामचंद्रनिवास, दादर–मुंबई १४.

वर्ष १ लें.] दादर—शुक्रवार, तारीख २९ जून सन १९२८ इसवी. [अंक १ ला.

समतेचा उदय.

[कवि:—उत्तमराव कदम बी. ए.]

जाहिरातीचे दर :— कालमच्या दर ओळीस पहिल्या वेळीं ५ आणे. दुसऱ्या वेळीं ४ आ. कायम २॥ आणे.

Reg. No. B. 1430

वर्गणीचा दर वार्षिक ट. ह. सह २॥ रुपये.

मूकनायक

काय करूं आतां धरूनियां भीड । निःशंक हें तोंड वाजविलें ।।
नव्हे जगीं कोणी मुकीयांचा जाण । सार्थक लाजून नव्हे हित ।।

वर्ष १ लें.] मुंबई, शनिवार ता. ३१ जानेवारी १९२० [अंक १ ला

मूकनायक.

मनोगत

जर या हिंदुस्थान देशातील सृष्ट पदार्थांच्या व मानवजातीच्या विकासाकडे प्रेक्षक या नात्याने पाहिले तर, हा देश म्हणजे केवळ विषमतेचे माहेरघर आहे; असे निःसंशय दिसेल. येथील सृष्टि-पदार्थांची उपयुक्तता व विपुलता; व त्याशी संलग्न असलेल्या अफाट जनसमूहात वसत असलेल्या दारिद्र्याची विषमता इतकी मनोवेधक आहे की, तिच्याकडे असावधपणातदेखील लक्ष गेल्या-शिवाय रहाणार नाही. परंतु या विषमतेकडे लक्ष जाते न जाते तोच, या देशात वास्तव्य करणाऱ्या मानवांत नांदत असलेली, व उपरिनिर्दिष्ट धाकट्या बहिणीस लाजणारी ही थोरली विषमता दत्त म्हणून डोळ्यापुढे उभी रहाते.

या हिंदी जनांत वसणारी विषमता अनेक स्वरूपाची आहे. सर्वसाधारण असलेली कायिक, व मानवकोटीच्या आद्य शाखाअन्वये उद्भवलेली विषमता येथेही आहेच. काळे-गोरे, उंच-ठेंगणे, नाकेले किंवा फेंदारलेले तसेच आर्य-अनार्य, गोंड-कोंड, यावनी-द्रविड, अरब व इराणी इत्यादी भेद काही ठिकाणी जागृत, तर काही ठिकाणी भ्रमित; व काही ठिकाणी स्थित पण आहेतच. धार्मिक विषमता कायिक व मानवकोटीच्या शाखाअन्वये येणाऱ्या विषमतेपेक्षा प्रज्वलित स्थितीत आहे व केव्हां केव्हां तर ही धार्मिक विषमता विकोपास जाऊन तिच्या पायी रक्तपातसुद्धा होतो. हिंदु, पारसी, यहुदी, मुसलमान, खिस्ती वगैरे धार्मिक विषमतेचे तट तर आहेतच, पण अधिक बारीक दृष्टीने पाहिल्यास हिंदुधर्मीयात शिरलेल्या विषमतेचे स्वरूप जितके कल्पनातीत, तितकेच ते निंदास्पदही आहे.

हा मांग — हा ब्राह्मण, हा कुणबी — हा मराठा, हा महार — हा चांभार, हा कायस्थ — हा पार्शी, हा कोरी — हा वैश्य, इत्यादी भिन्न भिन्न जातींचा हिंदुधर्माच्या पोकळीत समावेश होतो. एकधर्मीय-त्वाच्या भावनेपेक्षा भिन्न जातीयत्वभावनेच्या मुळ्या किती खोल गेल्या आहेत हे हिंदूंना सांगणे नकोच. एखाद्या युरोपीय गृहस्थाने आपण कोण? या प्रश्नास इंग्लिश, जर्मन, फ्रेंच, इटालियन इत्यादी-प्रकारचे उत्तर दिले की समाधान होते. परंतु हिंदूंची मात्र तशी स्थिती नाही. मी हिंदू आहे या उत्तराने कुणाची तृप्ती व्हावयाची नाही. त्याला आपली जात काय ? हें सांगणें अगदी जरूर असते. म्हणजे आपली विवक्षित माणुसकी व्यक्त करण्यासाठी प्रत्येक हिंदूला आपली विषमता पदोपदी उघडकीस आणावी लागत आहे.

हिंदुधर्मीयांत असलेली ही विषमता जितकी अनुपम आहे, तितकीच ती निंदास्पदही आहे. कारण विषमतेनुरूप होणाऱ्या व्यवहाराचे स्वरूप हिंदुधर्माच्या शीलाला शोभण्यासारखे खास नाही. हिंदु-धर्मात समाविष्ट होणाऱ्या जाती उच्च-नीच भावनेने प्रेरित झाल्या आहेत हे उघड आहे. हिंदुसमाज हा एक मनोरा आहे. व एक एक जात म्हणजे त्याचा एक एक मजलाच होय. पण लक्षात ठेवण्या-सारखी गोष्ट ही आहे की, या मनोऱ्यास शिडी नाही. आणि म्हणून एका मजल्यावरून दुसऱ्या मजल्यावर जाण्यास मार्ग नाही. ज्या मजल्यात ज्यांनी जन्मावे; त्याच मजल्यात त्यांनी मरावे. खालच्या मजल्यातला इसम, मग तो कितीही लायक असो; त्याला वरच्या मजल्यात प्रवेश नाही. व वरच्या माजल्यातला माणूस, मग तो कितीही नालायक असो; त्याला खालच्या मजल्यात लोटून देण्याची कोणाची प्राज्ञा नाही.

उघड भाषेत बोलावयाचे म्हणजे जाती-जातीत असलेल्या या उच्च-नीच भावना, गुणावगुणांच्या पायावर झाल्या आहेत; असें नाही. उच्च जातीत जन्मलेला, मग तो कितीही अवगुणी असो; तो उच्च म्हणावयाचा. तसेच, नीच जातीत जन्मलेला, मग तो कितीही गुणी असो; तो नीचच रहावयाचा. दुसरे असे की, परस्परांत रोटी-बेटीव्यवहार होत नसल्यामुळे दरएक जात या जिव्हाळ्याच्या संबंधात स्वयंबद्ध म्हणजे तुटक आहे. ही निकटसंबंधाची गोष्ट जरी बाजूस टाकली तरी परस्परांतील बाह्य व्यवहार अनियंत्रित असा नाही. काहींचा व्यवहार दारापर्यंत होतो. व कांही जाती तर

Regd. No. B. ७०५

जनहित प्रवर्तक पाक्षिक पत्र

जनता
THE PEOPLE

वर्ष १ लें.] दादर–सोमवार तारीख २४ नोव्हेंबर सन १९३० इसवी. [अंक १ ला.

विषयानुक्रमणिका:–

विषय	पृष्ठ.
१ राजकारणाचे तीन रंग.	१
२ आती मागाच्या की नाही ?	२
३ म. इं. सोमवंशीचे कर्नाटकातील अस्पृश्योद्धाराचे कार्य.	३
४ प्रासंगिक विचार.	४-५
५ डॉ. आंबेडकर व मिडलहॅम बंधु.	६
६ परंपरा व मन:स्थिती.	७
७ न्हावी आम्हाला.	८

"समता" व "बहिष्कृत भारत"
वर्गणीदारांना विनंति.

मुख्यत: आर्थिक परिस्थिति अनुकूल नसल्यामुळें व इतर अनेक विपरित परिस्थितीत सापडल्यामुळे वरील दोन्ही पत्रें बंद करणें भाग पडलें, म्हणून वरील पत्रांच्या व्यवस्थापकांना खरोखरच फार दिलगिरी वाटते. तरीपण वर्गणीदारांनी भरलेल्या वर्गणीची फेड करण्याकरिता "जनता-पत्रिकेच्या" व्यवस्थापकाशी व्यवस्था करण्याचें आम्ही ठरविलें व त्याप्रमाणें त्यांनीही आमच्या विनंतीस मान देऊन "समता" व "बहिष्कृत भारताच्या" वर्गणीदारास वर्गणीची मुदत संपेपर्यंत "जनतेचे" अंक विनामोबदला देण्याचें ठरविलें आहे. 'जनता पाक्षिक' हेही पत्र डॉ. आंबेडकर व समाज समता संघाच्या चालक मंडळींच्या नेतृत्वाखाली निघत असल्यामुळें वरील दोन्ही पत्रांचे वर्गणीदार त्यास उदार आश्रय देतील अशी आम्हांस पूर्ण खात्री आहे.

व्यवस्थापक,
"समता व बहिष्कृत भारत"

राजकारणाचे तीन रंग

हिंदुस्थानच्या भावी राज्यघटनेची वाटाघाट करण्यासाठी बोलाविण्यात आलेल्या राऊंड टेबल कॉन्फरन्सच्या बैठकीस ता. १२ नोव्हेंबर १९३० रोजी सुरुवात झाली. या दिवशी बादशहा यांचें भाषण, मुख्य प्रधान मि. मॅकडोनाल्ड, बडोद्याचे महाराज, मि. जिना व मि. शास्त्री वगैरेंची भाषणें झाली. या कॉन्फरन्सनें हिंदुस्थानची घटना फेडरल (संयुक्त) अथवा युनिटरी (एकमुखी) असावी की काय या प्रश्नाचा विचार करण्यासाठी नेमलेल्या कमेटीत डॉ. आंबेडकरांचा समावेश करण्यांत आला आहे. ता. २० रोजी झालेल्या भाषणांत डॉ. आंबेडकरांनी बहिष्कृतांना देखील स्वराज्य पाहिजे या मागणीची घोषणा करून ब्रिटिश लोकांनी हिंदुस्थानच्या इतर लोकांची हांजी हांजी करणें हें बहिष्कृतासाठी काहीच केलें नाही असें जाहीर केलें. हिंदु, मुसलमान, बहिष्कृत, ख्रिस्ती वगैरे प्रश्नासंबंधी रोज चर्चा चालत असून तो प्रश्न समाधानकारक रीतीनें मिटविण्यासाठी आटोकाट प्रयत्न चालले आहेत.

कलकत्त्यास भरलेल्या ऑ. इं. ट्रेड युनियन काँग्रेसनें हिंदुस्थानांत कामगार वर्गाचा संघ घडवून आणण्याचें जाहिर केलें आहे, त्यामुळें येथील राजकारणास एक निराळीच दिशा लागण्याचा संभव आहे.

काँग्रेसची चळवळ सर्वत्र जोरात असून ठिकठिकाणी स्वदेशीबद्दल जास्त भर देण्यांत येत आहे. इतक्या दिवस गाजत असलेल्या करबंदीच्या चळवळीस अजून सुरुवात झाली आहे असें म्हणतां येत नाही. परदेशी कापडावरील पिकेटींग चालू असल्यामुळे नव्या ऑर्डिनन्स खालीं पिकेटींग करणाऱ्या देशसेविका व स्वयंसेवक यांची धरपकड चालू आहे.

मुद्रक–भा. र. कद्रेकर, भारत भूषण प्रेस, दादर, मुंबई नंबर १४.

संदर्भ:

1.सेन शास्त्री, आचार्य क्षितिमोहन (2006) भारतवर्ष में जातिभेद, साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, पृष्ठ-7
2. वही, पृष्ठ-8
3. वही, पृष्ठ-8
4. वही, पृष्ठ-7
5. वही, पृष्ठ-19
6. 'यंग इंडिया', 04-05-1921, पृष्ठ-144
7. वही, 05-11-1931, पृष्ठ-341
8. 'हरिजन', 24-12-1938, पृष्ठ-393
9. 'यंग इंडिया', 25-05-1921, पृष्ठ--165
10. वही, 11-03-1926, पृष्ठ-95
11. वही, 06-01-1927, पृष्ठ-2
12. 'हरिजन', 28-09-1947, पृष्ठ-349
13. 'यंग इंडिया', 26-11-1931, पृष्ठ-372
14. 'हरिजन', 25-03-1933, पृष्ठ-3
15. वही, 11-02-1933, पृष्ठ-3
16. 'यंग इंडिया', 27-10-1927, पृष्ठ-357
17. वही, 04-06-1931, पृष्ठ-129
18. 'हरिजन', 25-03-1933, पृष्ठ-3
19. 'माडर्न रिव्यू', अक्टूबर 1935, पृष्ठ-413
20. 'हरिजन', 16-11-1935, पृष्ठ-316
21. 'यंग इंडिया', 08-12-1920, पृष्ठ-3
22. वही, 05-01-1921, पृष्ठ-2
23. वही, 04-06-1931, पृष्ठ-129
24. दुबे, अभय कुमार (संपादन, संस्करण-2008), आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-59
25. वही, पृष्ठ-193
26. वही, पृष्ठ-259
27. 'मूकनायक', 31 जनवरी 1920
28. वही, 31 जनवरी 1920
29. वही, 31 जनवरी 1920
30. वही, 14 अगस्त 1920
31. वही, 27 मार्च 1920
32. 'बहिष्कृत भारत', 22 अप्रैल 1927
33. वही, 20 मई 1927

RESEARCH CHRONICLER